

यह लेख नीतिगत विमर्श में गुणवत्ता के बदले
अर्थों का विश्लेषण करते हुए भारतीय संदर्भों में
शैक्षिक सुधारों को सिर्फ गरीबों की शिक्षा से
जोड़कर देखने की प्रवृत्ति को उजागर करता है
और विकासशील देशों में पश्चिमी दानदाता
संस्थाओं द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे
प्रबंधन-जवाबदेही मॉडल की आलोचना
करता है।

गुणवत्ता के सरोकार

राष्ट्रीय व राष्ट्र से परे के आयाम

नीतियों के निर्माण में “गुणवत्ता” का विचार धीरे-धीरे जोर पकड़ता जा रहा है और भारत में राष्ट्रीय स्तर पर व राज्य स्तरीय स्कूली शिक्षा तंत्रों द्वारा सर्व शिक्षा अभियान के हिस्से के तौर पर और गैर-सरकारी संस्थानों की अगुवाई और उनकी मदद से बड़े पैमाने पर चलने वाले विभिन्न कार्यक्रमों के जरिए इसे समझा और अमल में लाया जा रहा है। नियोजन की प्रक्रियाओं में ‘गुणवत्ता’ के नाम पर किए जाने वाले वित्तीय प्रावधान अब साफ तौर पर नजर आते हैं। राज्य के विभिन्न विभागों में स्कूली शिक्षा पर वित्तीय प्रावधान किए जाने और उपलब्धियां हासिल करने पर होने वाली चर्चाएं एक नई बात है। गुणवत्ता के विचार और उसके इतिहास और उसके आस-पास चलने वाली बहसों पर विचार करते हुए एक पर्व (कुमार व सारंगपाणि, 2004) में हमने यह दर्ज किया था कि गुणवत्ता की समझ बुनियादी तौर पर शिक्षा और उसके लक्ष्यों की समझ है। क्या शिक्षा से जुड़ी सार्वजनिक नीति में ‘गुणवत्ता’ की बहस का दाखिला, अगर उसके आगमन का नहीं हो तो भी, भारतीय सार्वजनिक शिक्षा के सरोकारों में बदलाव की तैयारी का संकेत है- संस्थानों के लिए प्रावधान करने के तौर-तरीकों से आगे बढ़कर खुद शिक्षा की धारणा के साथ, यानी इस शिक्षा के लक्ष्यों के साथ, ज्यादा बुनियादी जुड़ाव की ओर बढ़ने का ? दूसरे शब्दों में कहें तो, क्या हम नियोजन में पहुंच व ठहराव के लिए प्रावधान करने के तौर-तरीकों से आगे बढ़कर शिक्षा के सार या तात्पर्य- पाठ्यचर्या, शिक्षणशास्त्र और सीखने में लंबे इंतजार से बकाया बुनियादी सुधार की ओर बढ़ रहे हैं ?

यह पर्चा मौजूदा नीतिगत विमर्श और क्रियान्वयन में ‘गुणवत्ता’ के चरित्र का विश्लेषण पेश करता है। मेरी दलील है कि सर्व शिक्षा अभियान से उभरने वाले मौजूदा कार्यक्रम और नीतियां मोटे तौर पर द्विपक्षीय या बहुपक्षीय कर्जे और दानदाता एजेंसियों द्वारा समर्थित ‘गुणवत्ता’ की समझ से संचालित होती हैं जो इस वक्त सीधे-सीधे और दबे छुपे ढंग से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय

दोनों ही स्तरों पर काम कर रही है। ये गुणवत्ता की उस समझ को मूर्त रूप में देखना चाहते हैं जो मोटे तौर पर विकास के अंतर्राष्ट्रीय ढाँचों व 'मिशन' से निकलकर आती है और उन्हीं पर निर्भर करते हैं, जो सीमित है और सीमित कर रही है क्योंकि वह सिर्फ न्यूनतम शैक्षिक सुधारों को ही कंधा (यानी सहारा) देने लायक है। मेरी दलील यह भी है कि गुणवत्ता की इस न्यूनतावादी समझ का 'राष्ट्रीय' चरित्र है जो सिर्फ 'अंतर्राष्ट्रीय' असरों को झलकाने के बजाय, 'राष्ट्र से परे' का पूरक और उसकी झलक दर्शाने वाला, दोनों ही है।

अवधारणा का विकास : गुणवत्ता से पहले और गुणवत्ता के बाद

यह दावा करना तो खैर विरोधाभासी होगा कि आमतौर पर शिक्षा और खास तौर पर शैक्षिक सुधारों को 'गुणवत्ता' जैसे विचार की कतई जरूरत नहीं है। शिक्षा की अवधारणा में यह जरूरी हो जाता है कि हम इसके गुणों व खासियतों को समझाएं ताकि वे हमें अच्छे स्कूलों, शिक्षकों, शिक्षणशास्त्र, पाठ्यचर्या और सीखने को पहचानने के काबिल बना सकें। इन बेशकीमती और इसलिए वांछित गुणों के संदर्भ में, और इसीलिए नतीजे में 'गुणवत्ता' की अवधारणा के साथ, सुधारों की कोशिशों की दिशाओं और आयामों को गढ़ा जाता है (कुमार व सारंगपाणि, 2004)। फिर भी, जब हम 1947 से बाद के विभिन्न शैक्षिक नीतिगत दस्तावेजों का सर्वे करते हैं, 'गुणवत्ता' की शब्दावली का इस्तेमाल सिर्फ 1990 के दशक के आधे गुजर जाने के बाद नजर आना शुरू होता है, और भारतीय सार्वजनिक शिक्षा में हुए अहम् बदलावों के साथ इस मौजूदगी का सुमेल बैठता नजर आता है। न सिर्फ शैक्षिक नीतिगत विमर्श बल्कि खुद शिक्षा नीति भी कम और ज्यादा इस गुणवत्ता से पहले और गुणवत्ता बाद वाले काल खंड में बांटी जा सकती है। गुणवत्ता के बाद वाले कालखंड की शुरुआत 1980 के दशक के आखिरी हिस्से से 1990 के दशक की शुरुआत के बीच मानी जा सकती है, मोटे तौर पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986 अ) और भारत सरकार (भारत सरकार, 1986 ब) के न्यूनतम अधिगम स्तर और जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (1993 के बाद) के बीच में।

गुणवत्ता से पहले के दौर में 'गुणवत्ता' एक खास अवधारणा के तौर पर नीति से जुड़े दस्तावेजों में बमुश्किल ही दिखाई पड़ती थी। भारत सरकार के शिक्षा से जुड़े सभी सार्थक व महत्वपूर्ण आयोगों

व नीतिगत पहलकदमियों ने, मुदालियार आयोग (भारत सरकार, 1953) व कोठारी आयोग (भारत सरकार, 1966) से शुरू करके, तंत्र या प्रणाली को सुधारने की अहमियत की ओर मजबूती के साथ बच्चों के स्कूली अनुभवों को और बेहतर बनाने की चर्चा की थी। उन्होंने खास तौर पर स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा की प्रकृति में मौजूद समस्याओं की इन बातों पर जोर दिया, जैसे, रटकर याद करना, परीक्षा केन्द्रित शिक्षण, घटिया पाठ्यपुस्तकें, बंधे-बंधाए ढर्रे पर चलने वाले सिखाने के तरीकों के साथ निष्क्रिय व ठसस पड़ी कक्षाएं। शिक्षा के नतीजों का संदर्भ लिया जाए तो, यानी कि इसके नतीजे हमेशा से ही वित्तीय प्रावधानों की प्रकृति के साथ जुड़े थे, तंत्र के फैलाव की वजह से वित्तीय प्रावधानों में बढ़ोतरी के संदर्भ में, और निजी सेवादाताओं की मौजूदगी और चर्चाएं, वित्तीय प्रावधानीकरण तथा प्रक्रियाओं व नतीजों दोनों ही मामलों में मानकों की जरूरत पर केन्द्रित थी ताकि वे समावेशी, समग्र व समतावादी समाज के निर्माण में योगदान कर सकें (भारत सरकार, 1966, पृ.10, 40-41)। साफ था कि राज्य औपनिवेशिक प्रणाली को बदलने के लिए प्रतिबद्ध था ताकि उभरते लोकतंत्र की जरूरतों को पूरा किया जा सके। केन्द्रीय विचार यह था कि तंत्र को इस तरह से सुधारा जाए कि वह सामाजिक सुधार के एजेण्डे को लागू करने में मददगार हो।

गुणवत्ता के बाद : प्रारंभिक शिक्षा पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (भारत सरकार, 1986 अ) के बयान को इस इरादे की अभिव्यक्ति के तौर पर पढ़ा जा सकता है कि किसी भी तरीके से प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण को हासिल किया जाना था और इसीलिए पहुंच का दायरा फैलाने पर पूरा ध्यान दिया गया। यह दस्तावेज 'गुणवत्ता' की शब्दावली के इस्तेमाल की शुरुआत की निशानदेही एक खास तुलनात्मक अर्थ में यह दावा करने के लिए करता है कि प्रारंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण कई तरह के संस्थानीकरणों के जरिए हासिल किया जा सकता है, जिसमें अनौपचारिक शिक्षा और वे सभी संस्थान शामिल हैं जो तुलना करने लायक यानी तुलनीय 'गुणवत्ता' के हो सकते हैं, भले ही वित्तीय प्रावधानों के मामले में वे तुलना करने लायक न हों। इसे शिक्षा के नतीजों और प्रक्रियाओं के विचार को निवेश और वित्तीय प्रावधानों के विचार से मुक्त किए जाने के तौर पर पढ़ा या समझा जा सकता है- अब किसी एक की गुणवत्ता को मोटे तौर पर तुलनात्मक रूप से दूसरे की गुणवत्ता या

उसकी पहुंच या हद से आजाद रखा जा रहा है। यह दस्तावेज नतीजों में बराबरी के विचार को 'न्यूनतम अधिगम स्तर' की शब्दावली में पेश करता है, जिसे सभी तंत्रों या प्रणालियों द्वारा हासिल किया जाना चाहिए, भले ही वे औपचारिक हों या अनौपचारिक। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 पाठ्यचर्या, प्रक्रियाओं और शिक्षकों को तैयार करने के संदर्भ में भी व्यापक सुधारों की चर्चा करती है और नए संस्थानों के सृजन जैसे जिला शिक्षक प्रशिक्षण एवं शिक्षण संस्थान (डाइट) पर भी ध्यान केन्द्रित करती है, जिनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे विकेन्द्रीकृत संस्थानों और जिला स्तर पर अमला तैयार करने या श्रमशक्ति का विकास करने के जरिए प्रारंभिक शिक्षा में सुधार करने और उन्हें मजबूत करने में मदद करेंगे।

लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति-86 के सीधे नतीजे के तौर पर 'न्यूनतम अधिगत स्तर' (भारत सरकार, 1986 ब) के लिए बनी समिति ने पाया कि उसकी कोशिशें 'गुणवत्ता को साफ तौर पर व विस्तार से' असरकारक ढंग से व्यक्त करने जैसी थी। उसने जरूरत को "बच्चे को शिक्षा के हर स्तर के आखिर में क्या सीखना चाहिए इसे एकदम हूबहू समझाने" (उपरोक्त, भाग 2.1) के तौर पर लिया जो कि मोटे तौर पर तीन वजहों से निकलकर आता था: पहली, जवाबदेही, दूसरी, स्कूलों में सुधार और तीसरी, सरकारी स्कूली तंत्र में न्यूनतम मानदंडों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना। इस दस्तावेज ने किए गए प्रावधानों व प्रक्रियाओं की गुणवत्ता के ऊपर तरजीह देते हुए शिक्षा तंत्र की गुणवत्ता को मापने लायक नतीजों के साथ एकदम साफ तौर पर जोड़ दिया।

किसी स्कूल या शैक्षिक तंत्र की गुणवत्ता को वास्तविक अर्थों में, उसके छात्रों और उससे पढ़कर निकलने वालों की काबिलियत के प्रदर्शन के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। लेकिन, व्यवहार में, चूंकि शिक्षा के बहुपक्षीय नतीजों की तुलना में शिक्षण प्रक्रिया में किए गए निवेश को मापना आमतौर पर आसान होता है, इसलिए अक्सर गुणवत्ता को पहले वाले की तुलना में बाद वाले की शब्दावली में व्यक्त किया या दर्शाया जाता है। हालांकि, मौजूदा वक्त में, जबकि स्कूली सुधार कार्यक्रमों का ध्यान उन कारकों पर रहता है जिनसे प्रति व्यक्ति लागत बढ़ने की संभावना रहती है, तब यह जरूरी हो जाता है कि स्कूलों की गुणवत्ता के बारे में कोई नतीजा निकालने के मानदंड इस बुनियाद पर तय किए जाएं कि क्या उस स्कूल में छात्राएं/छात्र हकीकत में सीख रहे हैं? वे चीजें क्या हैं जो किसी स्कूल को बेहतर बनाती हैं? क्या वे अच्छी इमारतें, अच्छे औजार हैं या फिर बेहतर काबिलियत वाले शिक्षक? किस हद तक हम शैक्षिक

उपलब्धियों के मामलों में नतीजों को बढ़ाने के लिए निवेश को बढ़ा सकते हैं? किस तरह के निवेश से बेहतर नतीजे मिलेंगे? इन सभी सवालों के ठीक-ठाक जवाबों का पता लगाने व चुनिंदा तरीके से निवेश करने के लिए, सबसे पहले हमें व्यावहारिक तौर पर सभी बच्चों के द्वारा हासिल किए जाने लायक नतीजों को उपलब्धियों के प्रत्याशित मानदंडों के रूप में समझाना पड़ेगा (भारत सरकार, 1986 ब, भाग 2.2)।

यहां पर इस बात को दर्ज किया जाना जरूरी है कि समिति की अध्यक्षता करने वाले जिस व्यक्ति पर न्यूनतम अधिगम स्तर को बनाने के जिम्मेदारी थी, वे बेंजामिन ब्लूम के छात्र थे, जो कि छात्र मूल्यांकन के क्षेत्र में एक असरदार लीडर थे, और संयुक्त राज्य अमेरिका में उस जमाने में लोकप्रिय थे जब वहां सार्वजनिक स्कूली प्रणाली की प्रशासनिक निगरानी और जवाबदेही ने आकार ग्रहण करना शुरू ही किया था (इसके संबंध में और भारतीय संदर्भ में इसकी ऐतिहासिकता पर विस्तृत चर्चा के लिए देखें सारंगपाणि, 2005)। फिर भी, न्यूनतम अधिगम स्तर ने शैक्षिक सुधारों के दायरे को पूरी तरह से 'सीमित' नहीं किया, जमीनी कार्यकर्ताओं ने इसकी पुनर्व्याख्या एक ऐसे 'औजार' के तौर पर की, जो शिक्षकों को पाठ्यपुस्तक केन्द्रित शिक्षण से 'मुक्त' करता था और अतिरिक्त शिक्षण सामग्री का इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित करता था, जो शैक्षिक उद्देश्यों को हासिल करने और उससे मिलने वाले संतोष की ओर ले जा सकता था। न्यूनतम अधिगम स्तर की बुनियाद पर बनने वाले कार्यक्रम मोटे तौर पर 'कार्यक्रम या योजना आधारित अधिगम' जैसी योजनाओं का अनुसरण करते नजर आते थे, लेकिन न्यूनतम अधिगम स्तर के लिए बड़े पैमाने पर उपलब्धि परीक्षण, जो अब मुमकिन हैं, तब तक 'गुणवत्ता नियंत्रण' की उपाधि हासिल करने के लायक नहीं हुए थे।

पहली दफा 'गुणवत्ता' शिक्षा प्रणाली के एक खास स्वतंत्र पहलू के तौर पर जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की मार्गदर्शिका में नजर आई, जिसमें इसकी जगह पहुंच और ठहराव के साथ ही बनाई गई और इसे एक हासिल किए जाने वाले उद्देश्य की तरह नियोजन की प्रक्रिया के हिस्से की तरह शामिल किया गया। उस पूरे दस्तावेज में 'गुणवत्ता' के विचार को खास तौर पर 'अनिवार्य सीखने को सुनिश्चित करना' करने के साथ जोड़ा गया।

1.26 शैक्षिक गुणवत्ता ... जनसंख्या में वृद्धि की जरूरतों को पूरा करने के लिए, लड़कियों, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए पहुंच को बेहतर बनाने के लिए और कक्षाओं में भरी भीड़ को कम करने के लिए सुविधाओं का

विस्तार करने की जरूरत लगातार पड़ती रहेगी। इस वक्त सबसे अहम चुनौती उन स्कूलों में सीखने की उपलब्धियों और अंदरूनी कार्यक्षमता बढ़ाने की है, जो उन 10 करोड़ बच्चों की सेवा कर रहे हैं, जिनके नाम स्कूली वर्ष की शुरुआत में नामांकन रजिस्टर में लिखे जाते हैं (भारत सरकार, 1995)।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में शिक्षणशास्त्र में सुधार, संदर्भकृत पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तकें बनाने और शिक्षक की स्वायत्तता से जुड़े दूसरे विचार भी शामिल थे। हालांकि उन्हें अलग कर दिया गया और वे 'गुणवत्ता' के बारे में की जाने वाली चिंताओं का हिस्सा नहीं बन पाए, जो खास तौर पर शैक्षिक उपलब्धियों के मापन से जुड़ गई थी, और जिस पर अलग से खास-तौर पर ध्यान केन्द्रित हो गया था। इससे उलट, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से पहले बड़े पैमाने पर चलाए जाने वाले कुछ दूसरे अहम कार्यक्रम, जैसे आंध्र प्रदेश प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (1984/85 से 1987), जिसे यूनाइटेड किंगडम से मिली वित्तीय मदद से चलाया गया था, उसकी अवधारणा बनाने व अगुवाई का काम मोटे तौर पर यूनाइटेड किंगडम के शिक्षाविदों द्वारा किया गया था या फिर बिहार शिक्षा परियोजना (1991 में शुरुआत व दूसरा चरण 1996-98), जिसमें स्वीडन की वित्तीय मदद का इस्तेमाल किया गया था, उन्होंने स्कूली तंत्र में प्रस्तावित सुधारों के साधन के तौर पर गुणवत्ता की शब्दावली का इस्तेमाल नहीं किया था।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम और पूरे देश में उसके सभी स्वरूपों के आधार पर बनाए गए और 1998 में शुरू हुए सर्व शिक्षा अभियान और इससे जुड़ी सभी गतिविधियों से संबंधित सभी दस्तावेजों में भी अब 'गुणवत्ता' की शब्दावली का धड़ल्ले से अक्सर इस्तेमाल किया जाता है। भारत में बड़े पैमाने पर किए जाने वाले शैक्षिक सुधारों के केन्द्र में गुणवत्ता यानी बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियां हैं : अब पाठ्यचर्या की विषयवस्तु, शिक्षणशास्त्र की प्रक्रियाओं, पाठ्यपुस्तकों की घटिया गुणवत्ता या शिक्षकों व उनकी गुणवत्ता को बदलने या उसे बेहतर बनाने का जिक्र भी उसमें नजर नहीं आता। यह शब्दावली अब नियोजन प्रक्रियाओं का न सिर्फ एक जरूरी आयाम बन गई है, बल्कि शिक्षा के मूलभूत व महत्वपूर्ण आयामों का जिक्र करने के लिए सिर्फ यही अकेली धड़ल्ले से अक्सर इस्तेमाल की जाने लगी है। यह करीब-करीब वैसा ही है जैसे 'शिक्षा

की गुणवत्ता' कहते ही, कोई व्यक्ति स्कूल और उससे जुड़े संस्थानों और तंत्रों, दोनों ही से ताल्लुक रखती, शिक्षा की प्रक्रिया और उसकी विषयवस्तु से जुड़े सारे पहलुओं को एक छोटी-सी गोली या नुस्खे के तौर पर पेश करने में कामयाब हो जाए। इस शब्दावली का अब इस तरह से इस्तेमाल किया जाता है मानो इसमें खुद-ब-खुद ही अवधारणात्मक ताकत हो और इसमें नीतियों के उन पहलुओं को राह दिखाने की ताकत हो जिनका पहुंच मुहैया करवाने और ढांचागत सुविधाओं से कोई लेना देना न हो। तो इसलिए अब राज्य पहुंच व ढांचागत सुविधाओं को 'सुनिश्चित करने' के साथ-साथ गुणवत्ता को भी 'सुनिश्चित' कर सकते हैं। कर्नाटक राज्य में 'गुणवत्ता को मापने'² यानी बच्चों की शैक्षिक उपलब्धियों को समर्पित एक नया संस्थान बनाया गया है, और यह ऐसी रपटें बनाएगा जिनकी बुनियाद पर तंत्र उन बातों की पहचान करेगा जिनको 'सुनिश्चित किए जाने' की जरूरत है। दूसरे देशों में चल रही बहसों में 'गुणवत्ता' की शब्दावली के इस्तेमाल का अध्ययन यह दिखाता है कि यह खास तौर पर उन शिक्षा प्रणालियों या तंत्रों के साथ जुड़ा है जिनका विकास व विस्तार हो रहा हो, और सार्वजनिक खर्च में बढ़ोतरी हो रही हो, और सभी बच्चों तक इसकी पहुंच हो रही हो, और यह सब मोटे तौर पर बच्चों के सीखने और पाठ्यचर्या व शैक्षणिक व्यवहारों से संबंधित सरोकारों या चिंताओं को पेश करने के काम आता है, और इसे सबसे साफ तौर पर 1950 व 60 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका के संदर्भ में देखा जा सकता है (कुमार व सारंगपाणि, 2004)। यह भारत के मामले में भी सही नजर आता है, इसकी तुलना के लिए 1990-2000 के

दशक का काल खंड लिया जा सकता है। और भी, जब हम गुणवत्ता के विचार के कार्यान्वयन को, इसी विचार से उपजने वाली किन्हीं खास गतिविधियों के जरिए खोलते-समझते हैं, तो यह बात एकदम शीशे की तरह साफ हो जाती है कि गुणवत्ता पर चलने वाली बहस हकीकत में स्कूलीकरण की सरकारी या सार्वजनिक प्रणाली पर चलने वाली बहस है और इस तंत्र के ठीक से काम करने और स्कूली शिक्षा की व्यवस्था कर पाने की इसकी काबिलियत पर है।

लेकिन एक अहम फर्क यह है कि आज की भारतीय शिक्षा में शिक्षा की गुणवत्ता एक जीवंत अवधारणा है और यह उस शिक्षा से संबंधित है जो गरीबों के बच्चों को दी जानी है, यानी हम यह कैसे

सुनिश्चित करें कि गरीबों के बच्चे बुनियादी यानी मूलभूत शिक्षा हासिल कर लें और हम इसे कुशलतापूर्वक और लागत को असरकारक ढंग से काबू में रखते हुए कैसे हासिल करें ? नीति में 'गुणवत्ता' की मौजूदगी हकीकत में गरीबों की शिक्षा के संदर्भ में है, इस मान्यता को रेखांकित करने की जरूरत है।

इस अनकही मान्यता में यह बात अंतर्निहित है कि मध्यम वर्ग इस शिक्षा से बाहर निकल चुका है और वह निजी शिक्षा सेवादाताओं से शिक्षा को खरीदने के काबिल हो चुका है। इस मान्यता के अंदर यह बात भी रची-बसी हुई है कि निजी संस्थानों द्वारा मुहैया करवाई जाने वाली शिक्षा राज्य द्वारा प्रमाणित व कुछ हद तक उसी से नियमित व नियंत्रित है, और वह एक तरह का 'मानक' है और उसकी विषयवस्तु व प्रक्रियाओं में किसी किस्म के बुनियादी 'गुणात्मक' सुधारों की कोई जरूरत नहीं है। यहां तक कि जब इस शिक्षा को सुधारों की जरूरत होती है, इसके साथ इस तरह का बर्ताव किया जाता है जैसे कि यह सरकारी तंत्र के जरिए गरीब बच्चों को मुहैया करवाई जाने वाली शिक्षा के लिए जरूरी सुधारों से कोई अलग किस्म की समस्या है। इसमें कहा जा रहा है कि अमीरों के (निजी) स्कूलों की गुणवत्ता की समस्या की प्रकृति, गरीबों के (सरकारी) स्कूलों से अलग है और नतीजन उसके लिए अलग तरह की कार्रवाई की जरूरत है। गरीबों के लिए चल रहे सरकारी स्कूलों के लिए 'गुणवत्ता संबंधी सरोकारों' को कार्यक्रमों के संचालनों के जरिए करने की मनोदशा कुछ इस तरह की है कि समस्या को सुनिश्चित करके, पैबंद लगाकर तंत्र को दुरुस्त कर दिया जाए जो कि बेहतरीन दशा में सुस्ती व काहिली में पड़ा रहता है और सबसे खराब हालातों में चरमराता-ढहता नजर आता है। तंत्र के ढहने का यह अहसास पहले से की जाने वाली चिंताओं- परवाहों को न्यायसंगत ठहराता नजर आता है और शिक्षा के 'सबसे जरूरी' हिस्से बच्चे के सीखने पर, अपना ध्यान केन्द्रित करता है। यह करीब-करीब वैसा ही है जैसे कि न्यायसंगत प्राथमिकता के तौर पर गुणवत्ता के सरोकार यह समझने को मजबूर करते हैं कि गरीबों को शिक्षा मुहैया करवाने के मामले में तंत्र नाकाम या ढह रहा है। नौकरशाहों व अंग्रेजी के छपाई माध्यमों में चहुंओर व दूर-दूर तक यह मान्यता पसरी हुई है कि सरकारी स्कूल का अध्यापक जवाबदेह नहीं है, वह अपने शिक्षार्थियों की सुध लेना छोड़ रहा है और उनके सीखने को पक्का करने में अपना पर्याप्त समय भी खर्च नहीं करता है। सीखने में इस नाकामी का कुछ गैर-सरकारी संस्थानों के महत्त्वपूर्ण अध्ययनों ने भी सरे आम जुलूस निकाल डाला है, जैसे असर रपट (प्रथम, 2005) और विश्व बैंक द्वारा प्रचारित 'शिक्षक गैर-हाजिरी' पर महत्त्वपूर्ण अध्ययन (उदाहरण के लिए, क्रैमर व अन्य, 2004)।

इन्हीं के नक्शे-कदमों पर चलते हुए कुछ राज्यों के सर्व शिक्षा अभियान के परियोजना कार्यालयों ने भी 'शिक्षकों की गैर-हाजिरी' पर अध्ययन का काम हाथ में ले लिया है।

कृष्ण कुमार (2010, इसी अंक में) विकसित पश्चिमी देशों में 'गुणवत्ता' पर बहस के उभार को दर्ज करते हैं, जहां पर उनकी केन्द्रीय चिंता-सरोकार "प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त" को स्थापित करने या बरकरार रखने की है। ऐसे मामलों में गुणवत्ता की बहस, शिक्षा तंत्रों को वैश्विक अर्थव्यवस्था और वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धात्मक होने की ओर अभिमुखीकरण करने के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, होती हुई नजर आती है। भारतीय संदर्भों में, ऐसे सरोकारों के उभार की शुरुआत कुछ निजी परीक्षण एजेन्सियों द्वारा शहरों के कुछ उच्च वर्गीय निजी स्कूलों में किए गए बहु-प्रचारित सर्वे के नतीजों में इस बात के पाए जाने से हुई कि उनके परीक्षणों में छात्राओं/छात्रों के परिणामों की गुणवत्ता घटिया दर्जे की दर्ज की गई। हालांकि, भारत में 'गुणवत्ता' के दबदबा रखने वाले सरोकार वे नजर आते हैं जो कि 'वैश्वीकृत' सरोकारों से कम से कम एक पीढ़ी पहले तक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मशहूर थे। गुणवत्ता की वे पहलकदमियां सामाजिक संकट को काबू में रखने के मकसद से की गई थीं और वे सुधारों की उस लहर (सुरक्षा तंत्र) से जुड़ी हुई थीं जो मुख्यतः 1970 के बाद से दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका के उप-सहारा क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की अगुवाई में ढांचागत समायोजन की नीतियों के कंधों पर सवार हो कर अस्तित्व में आई थी (ब्रॉक उल्ने, 2000)।

शिक्षा की गुणवत्ता के सरोकारों की पहचान व अलगाव को इस तरह से देखना कि शहरी/अमीर के लिए निजी स्कूल और ग्रामीण/गरीब के लिए सरकारी स्कूल हैं, यह भारतीय नीति में एक नई चीज है। जब तक कि यशपाल समिति (भारत सरकार, 1992) द्वारा पेश की गई रपट 'बिना बोझ के शिक्षा' नहीं आई थी तब तक आमतौर पर यह माना जाता था कि निजी स्कूल उन मानदंडों का नमूना पेश करते हैं, जिन्हें बाकी स्कूलों द्वारा हासिल किया जाना है। यशपाल समिति ने इस बात को दोहराया कि न सीख पाने और सीखने की घटिया गुणवत्ता की समस्याएं हमारे सभी स्कूलों में जाहिर तौर पर एक जैसी ही उभरकर सामने आती हैं और उन समस्याओं को उसी शिक्षा की विषयवस्तु व प्रक्रिया की एक समान समस्या की अभिव्यक्ति के तौर पर समझा जाना चाहिए और उन्हें गरीबों के लिए अलग तथा अमीरों के लिए अलग-अलग समस्या के तौर पर लिए जाने के बजाय, ऐसी अड़ियल समस्याओं के तौर पर लिया जाना चाहिए जिन्हें सुधारों की सख्त जरूरत है। उस रपट ने पूरे तंत्र के आमूल-चूल सुधार की जरूरत दर्शाई।

इसलिए 'गुणवत्ता' के मौजूदा सरोकार शिक्षा में सुधार की ओर ज्यादा उन्मुख नीति से विचलन को दर्शाते हैं, जो सरोकार जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के आने तक उसमें साफ तौर पर दिखाई पड़ते थे, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम उसमें एक निर्णायक मोड़ की तरह नजर आता है। हम भारतीय शिक्षा नीति में एक अलग किस्म की गतिशीलता को देख सकते हैं, ये कि दरअसल शिक्षा में सुधार कहीं दूर खड़ा है, अंतर्राष्ट्रीय हितों की बढ़ती मौजूदगी 'गुणवत्ता' के इस सरोकार को आकार-प्रकार देती और इसके नख-दंत गढ़ती नजर आती है।

अंतर्राष्ट्रीय आयाम : सुधार के तीन तरीके

1990 के दशक के बीच से लेकर उसके आखिरी हिस्से में बहुत तरह की अंतर्राष्ट्रीय एजेन्सियों, दानदाता एजेन्सियों द्वारा समर्थित द्विपक्षीय अनुदान, कर्जों, नीतियों में प्रमुखता से रखे जाने वाले मुद्दों या संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियों (मुख्यतः यूनिसेफ और विश्व बैंक) द्वारा शिक्षा में बड़े पैमाने पर किए गए हस्तक्षेप को बुनियादी तौर पर स्कूलीकरण और शिक्षा की सुधार प्रक्रिया के तीन तरीकों में से किसी एक या दूसरे में रखा जा सकता है।

इन तीनों में सबसे पहले तरीके की खासियतों को इस शीर्षक में समेटा जा सकता है 'बुनियादी और प्रगतिशील शिक्षा को बांटने या सौंपने वाला समूह', मोटे तौर पर इसके उदाहरण 1980 के दशक में यूनिसेफ द्वारा बहुत से देशों के साथ किए गए काम के साथ-साथ ही यूनाइटेड किंगडम द्वारा समर्थित आंध्र प्रदेश की प्राथमिक शिक्षा परियोजना में भी नजर आते हैं। इन प्रयोगों में बड़े पैमाने पर सरकारी शैक्षिक तंत्र में बच्चों को असरकारक व उनके लिए दोस्ताना ढंग की शिक्षा दिए जाने के लिए काम-चलाऊ प्रारूपों को स्थापित करने की कोशिश की गई। इसमें विभिन्न व्यवस्थाओं को बनाने, क्षमता निर्माण और व्यापक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माण तथा बड़े पैमाने पर शिक्षाविदों और शिक्षाशास्त्रियों के साथ किए जाने वाले काम जैसी गतिविधियां शामिल थीं। अलग-अलग हदों या सीमाओं तक इन बड़े पैमाने पर किए जाने वाले हस्तक्षेपों प्रबंधन-शिक्षण शास्त्र के तौर-तरीकों को काम में लिया गया (गीरू, 2004) जिसमें उन्होंने बहुत बारीकी से इस हद तक निर्देशित करने की कोशिश की कि शिक्षकों को रोजाना या यहां तक कि हर घंटे में अपनी कक्षा के कमरे में क्या करना चाहिए।¹³ वे अनिवार्य रूप से शिक्षक की स्वायत्तता को बढ़ावा नहीं देते थे लेकिन कक्षा में आम

तौर पर किसी को भी नजर आने वाले दृश्य को सुधारने की ओर उन्मुख थे।

इन तरीकों में से दूसरे तरीके को अंतर्राष्ट्रीय बहसों में 1990 के दशक के आखिरी हिस्से में देखा गया जिसे साधारणतया 'स्कूल प्रभाविकता समूह' के रूप में पहचाना जाता है। यह समूह, साधारण रूप में यह समझने की कोशिश करता है कि कौन से कारक स्कूल को प्रभावशाली बनाते हैं और उन कारकों का स्कूल के विकास के कार्यक्रमों में इस्तेमाल करने की कोशिश करता है। शोध और काम साधारणतया स्कूल से संबंधित उन मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं, जैसे कि स्कूल का संस्थागत ढांचा, स्कूल की विशेषताएं और कैसे उनको विकसित और हासिल करने लायक बनाया जा

सकता है। यह अक्सर संस्थागत विकास के महत्त्व, स्कूली नेतृत्व और स्कूली प्रबंधन की अहमियत की ओर इशारा करता है। इस काम की अगुवाई मुख्यतः शैक्षिक प्रबंधन शोधकर्ताओं, यूनेस्को, शैक्षिक नियोजन के अंतर्राष्ट्रीय संस्थान, आगा खान शैक्षिक सेवाएं आदि ने की, जिन्होंने इस काम को बढ़ावा दिया और इसका इस्तेमाल किया। इस तरह से शोध और तरीके न्याय संगत रूप से शैक्षिक सुधारों के लिए इस्तेमाल किए जाते रहे हैं परन्तु इसका इस्तेमाल विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में अधिक किया जाता है। रोचक बात यह है कि 1960 के दशक में अमेरिका में काम लिया जाने वाला सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन वाला तरीका वास्तव में स्कूल की प्रभाविकता वाले तरीके के अधिक नजदीक था, हालांकि उसके शीर्षक में 'गुणवत्ता'

शब्द का इस्तेमाल किया गया।¹⁴

इस बहस में तीसरा समूहीकरण 'गुणवत्ता समूह' के नाम से है, जिसकी पहचान विश्व बैंक के शिक्षा विभाग की अगुवाई में उसके अर्थशास्त्रियों और शोधकर्ताओं से की जा सकती है, जो शिक्षा की विषयवस्तु को तय करने में रणनीतिक अहमियत वाले प्रमुख कारकों को दिखाने लायक व लागत प्रभावी तरीकों से पहचान कर तय करने की कोशिश करते हैं। इसलिए, उन्हें रणनीतिक होना पड़ता है, काम करने या बदलाव या ध्यान केन्द्रित करने के लिए सीमित महत्त्वपूर्ण चरों की पहचान करती पड़ती है जिनका थोड़े ही वक्त में दिखाने लायक असर नजर आता हो और लागत में प्रभावी होना पड़ता है ताकि उनका इस्तेमाल शैक्षिक नीतियों को बनाने में किया जा सके। इस तरीके में स्कूल, शिक्षक, सिखाने की पाठ्यचर्या आदि

सभी को मापने लायक गुणों से लैस होना पड़ता है ताकि उनको उत्पादन के काम में जोता जा सके। यह गुणवत्ता को बगैर किसी संदर्भ के और खंड-खंड करके देखने का तरीका है, जो स्कूल को एक काले बक्से में बंद करके रखता है और गुणवत्ता को पेश करने का दावा करने वाले कुछ चुनिंदा सीमित कारकों यानी नुमाइंदगी करने वाले सूचकांकों के जरिए विषयवस्तु प्रक्रियाओं को पेश करने की अनुमति देता है। उदाहरण के लिए, एक महत्वपूर्ण और बहु-उद्धृत अध्ययन बेहमैन और बर्डसांल (1983) का है जिसने विश्व बैंक के अर्थशास्त्रियों को इस तरफ देखने के लिए मजबूर किया कि वे दी जा रही शिक्षा के उत्पादन प्रकार्यात्मक विश्लेषण में गुणवत्ता के कारकों को जोड़ें, इस दलील के साथ कि अर्थव्यवस्था के संदर्भ में शिक्षा के लिए किए गए प्रावधानों को समझने व उनकी व्याख्या करने के लिए पहुंच व ढांचागत सुविधाओं से जुड़े 'गुणवत्ता' वाले चर ही काफी नहीं हैं, उसके साथ-साथ गुणवत्ता पर भी गौर करने की जरूरत पड़ेगी। इस अध्ययन में गुणवत्ता की नुमाइंदगी सिर्फ एक गुण- अध्यापकों की योग्यता से की गई है। इसी तरह से रूस फुलर और प्रेमा क्लार्क (1994) ने शोधकार्यों के विस्तृत सर्वे में पाया कि गुणवत्ता की नुमाइंदगी करने के लिए अक्सर पाठ्यपुस्तक चुनी गई। इसी दौरान 'गुणवत्ता' को शिक्षा के अंतर्राष्ट्रीय विश्वकोश में जगह जरूर मिल गई थी (फुलर, 1994)।

ये सभी तीनों प्रारूप मूलभूत शिक्षा देने के प्रारूप हैं, परन्तु इसमें से पहले वाले में कम से कम अवधारणात्मक स्तर पर स्कूल में किए जाने वाले कामों को इस तरह से सुधारने की संभावनाएं हैं कि वे ज्यादा प्रगतिशील तौर-तरीकों का इस्तेमाल करें, इसके अलावा बाकी दो मूलभूत शिक्षा पर अधिक जोर देते हैं और तीसरे ने तो सिर्फ और सिर्फ इसी पर जोर दिया है। इसके अलावा गुणवत्ता समूह तो चरमराते हुए सरकारी तंत्र की दृश्यावली में मूलभूत शिक्षा मुहैया करवाने के तरीकों की तलाश में चिंता में डूबा नजर आता है (उदाहरण के लिए देखें, लॉकहीड, 2004)। इस तरीके में यह बात गहरे तक अपनी पैठ जमाए है कि स्कूल का गैर-संस्थानीकरण कर दिया जाए ताकि वह ऐसे संस्थान और ऐसी जगह के तौर पर गुणवत्ता की बहस से गैर-मौजूद हो जाए जहां पर शिक्षा दी जाती है। उसे सिर्फ उत्पाद या तंत्र की ऐसी जगह के तौर पर समझा जाए जिससे कोई चीज तैयार होकर 'बाहर निकलती' है। एक तंत्र जिस पर कुछ 'काम किए जाने' की जरूरत होती है ताकि उससे चाहा गया उत्पाद मिल सके। विश्व बैंक की इस गुणवत्ता की बहस में अगर स्कूल पर कहीं भी संस्थान के तौर पर जोर दिया भी गया है तो वह सिर्फ प्रदर्शन आधारित प्रोत्साहन योजनाओं या फिर लागत प्रभावी (यानी कि कम लागत वाली) शिक्षा के निजी सेवादाताओं के साथ होड़ भरे बाजार में खिलाड़ी के तौर पर ही है। अफ्रीका के

उप-सहारा क्षेत्र में शिक्षा को लेकर विश्व बैंक का यही नजरिया था और इस हकीकत को जानना हमें सकते में डाल देता है कि भारत को भी इसी समूह में रखा गया है। जब हम यह सोचते हैं कि राष्ट्र से परे की एजेन्सियां भारत को अफ्रीका के तरीके से समझती हैं तो मायूसी की जीवंत छवियां हमारे दिमाग में कौंध जाती हैं और तुरंत जो न्यायसंगत जवाब सूझता है वह यही है कि बुनियादी मुद्दों और मिशनरी तौर-तरीकों पर टिका जाए।

'गुणवत्ता' का संगम : राष्ट्रीय व राष्ट्र से परे का

टिप्पणीकारों ने दर्ज किया है कि शिक्षा में सुधार के लिए विश्व बैंक की 'मानक गठरी' स्कूल प्रबंधन के विकेन्द्रीकरण, निजी और समुदाय आधारित स्कूलों की भूमिका में बढ़ोतरी और इससे भी महत्वपूर्ण रूप से, खर्ची की पर्ची (वाउचर्स) जैसे विचारों और राष्ट्रीय आंकलन और केन्द्रीकृत सामग्री निर्माण व उसकी आपूर्ति पर आधारित होती है (मुन्डे, 2002)। इसमें किए गए निवेश से सबसे ज्यादा असर पैदा होने की संभावना सामग्री निर्माण, उसके वितरण पर होती है, जो सीधा-सीधा कक्षा में पहुंचता है या फिर सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण, जो उससे सिर्फ एक कदम दूर है। वे ऐसी गतिविधियों में निवेश करना पसंद करते हैं जिनका चरित्र प्रणालीगत ज्यादा होता है और जो कक्षा से थोड़ा दूर होता है। और जो तंत्र के भीतर ही होता है पर कक्षा से थोड़ा दूर होता है जैसे, सेवापूर्व प्रशिक्षण, पाठ्यचर्या नवीनीकरण या मूल्यांकन में सुधार।

विश्व बैंक के शिक्षा संबंधी 'कार्यसूची' की हालिया समीक्षा यह सुझाती है कि 2000 के साल तक उसमें विविधता काफी ज्यादा थी (मुन्डे 2002)। परंतु जैसा कि अब तक की गई चर्चा के विविध आयामों से देखा जा सकता है कि भारत में विश्व बैंक की रुचियों की अभिव्यक्ति, 1990 के दशक से एक मानक प्रारूप के अनुरूप ही रही है। जॉमेतियन व सभी के लिए शिक्षा की शुरुआत के साथ, मुख्य अनुदान-दानदाता समूहों की एजेन्सियां और यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियां भी गुणवत्ता के विचार के साथ काम करने के लिए सहमत दिखाई देने लगी हैं।

जॉमेतियन से पहले शिक्षा की सार्वजनिक व्यवस्था और उसमें सुधारों के तरीकों के बारे में विचारों में कुछ विविधता थी, परंतु अब हम देखते हैं ये सभी 'गुणवत्ता' के ढांचे के अनुरूप साथ काम करने के लिए राजी हो गए हैं। 2005 में सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर वैश्विक निगरानी की रपट (यूनेस्को, 2004) के हिस्से के तौर पर शामिल किए गए दस्तावेजों में स्कूल की प्रभाविकता और गुणवत्ता वाले तरीके में समानान्तर संबंधों की छानबीन की गई है। उन्होंने ऐसे विचारों की समानता पर ध्यान दिया है जैसे कि अभिभावकों के चुनाव के प्रति सैद्धांतिक प्रतिबद्धता और शिक्षा के निजी

सेवादाताओं की अहमियत (शीरीन्स, 2004)। भारतीय संदर्भों में, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के बाद, इस औजार और इसमें निहित चरमराते तंत्र की मान्यताओं के साथ विश्व बैंक और उसकी सहयोगी दानदाता एजेन्सियों जैसे यूरोपियन कमीशन ने भारतीय शिक्षा से संपर्क साधा और उसे इन चीजों का जवाब देने वाली नीतियां बनाने को मजबूर किया। बहुत सारे तत्कालीन अध्ययनों ने चरमराते तंत्र को दिखलाने की कोशिश की है, जैसे, शिक्षकों की गैर-हाजिरी, स्कूलों की कम उपलब्धि, जिन्हें या तो विश्व बैंक ने खुद किया है या फिर ऐसा ही अभिमुखीकरण रखने वाले संस्थानों और गैर-सरकारी संस्थानों ने विश्व बैंक के साथ औपचारिक या अनौपचारिक साझेदारी में किए हैं।

शैक्षिक गुणवत्ता को गढ़ने के मामले में बैंक की परिभाषा और उसके तरीकों से इत्तफाक रखने वाला और उसमें सहायक देश का नौकरशाह तंत्र और हालिया बड़े पैमाने पर काम करने वाले गैर- सरकारी संस्थानों के कार्यक्रम, जिनकी 'राष्ट्रीय स्तर पर मौजूदगी' है, भी स्कूल को सुधारने व निगरानी रखने के इन तरीकों को ज्यादा पसंद करते नजर आते हैं, जो ऐसे बिंदुओं पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जिनका सीधा-सीधा असर कक्षा पर पड़ता हो और जो बच्चों के सबसे करीब हो।

उदाहरण के लिए, कर्नाटक में सर्व शिक्षा अभियान में, आमतौर पर कार्यक्रमों द्वारा शिक्षक, उनकी गतिविधियों और उनकी कक्षाओं को सीधा-सीधा निशाना बनाया जा रहा है। तंत्र के हर स्तर पर शिक्षक को ध्यान में रखकर नीतियां बनाई जा रही हैं और शिक्षक को काबू में रखने तथा वह कक्षा में क्या करेगा, इसकी छोटी से छोटी बात का भी प्रबंधन (सूक्ष्म प्रबंधन) करने की कोशिश की जा रही है, एक मामले में तो यह काम दिनवार यहां तक कि घंटेवार किया गया है (राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण विभाग, 2006)। प्रबंधन-शिक्षणशास्त्र पर आधारित नई नली-कली प्रणाली अब पूरे राज्य भर में लागू की जा रही है। इसके जैसी ही एक और प्रणाली 'गतिविधि आधारित शिक्षण' के नाम से पहले से ही तमिलनाडु में मौजूद है। परीक्षण प्राप्तांकों में मापी गई गुणवत्ता अब कर्नाटक राज्य की निगरानी किए जाने के लिए भी उपलब्ध है। सर्व शिक्षा अभियान ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा बनाए गए गुणवत्ता की निगरानी के प्रारूपों को इस्तेमाल करने की कोशिश की है। बहुत से राज्य या तो वे खुद ही या फिर एक बड़े पैमाने पर काम करने

वाले एक गैर-सरकारी संस्थान की 'शिक्षा गारंटी कार्यक्रम' नामक परीक्षण सेवाओं की मदद से, गुणवत्ता को निगरानी करने के लिए औजार बना रहे हैं। उदाहरण के लिए, उत्तरांचल और उड़ीसा में विस्तृत प्रारूप बनाए गए हैं ताकि सभी विषयों में तिमाही परीक्षाएं ली जा सकें, संकुल, विकासखंड और जिले से लेकर राज्य के मुख्यालय तक सभी बच्चों के वर्ग (ग्रेड) को व्यवस्थित तरीके से इकट्ठा, कम्प्यूटरीकृत, और संक्षिप्तकृत किया जा सके और कक्षा को बेहद सघनता के साथ देखने के तौर-तरीके व मशीनरी ईजाद की गई है। निगरानी की गुणवत्ता को बरकरार रखने के लिए इस तरह की प्रणालियां जरूरी समझी गईं।

इसके अलावा सर्व शिक्षा अभियान के आकार-प्रकार को गढ़ने में अपनी भूमिका के साथ-साथ, अब विश्व बैंक बगैर किसी केन्द्रीय मध्यस्थ के, सीधे ही राज्यों के साथ तालमेल बिठा रहा है। कर्नाटक उन राज्यों में से एक है जिसका विश्व बैंक के साथ काम करने का, औपचारिक तौर पर भी और निजी-सार्वजनिक भागीदारी के रूप में एक गैर-सरकारी संस्थान के जरिए भी, बहुत व्यापक तालमेल है। विश्व बैंक राज्य में एक सहभागितापूर्ण नीति नियोजन इकाई और गुणवत्ता आंकलन परीक्षण संगठन को बनाने में सहायक रहा था। पड़ोसी राज्य आंध्र प्रदेश में, विश्व बैंक उसी गैर-सरकारी संगठन के साथ मिलकर एक जिले में एक वित्तीय प्रोत्साहन के जरिए नतीजों को सुधारने का प्रयोगात्मक कार्यक्रम चला रहा है (वेकटेश, 2009)।

'गुणवत्ता' की अगुवाई में सुधार :

संभावनाएं या सीमाएं ?

'गुणवत्ता' का विचार नीतिगत बहसों में दाखिल होकर उसमें अपनी जगह बना चुका है। क्या यह मुमकिन है कि इस मौके का इस्तेमाल ज्यादा बुनियादी और गहन शैक्षिक सुधारों में किया जा सके, जो सभी बच्चों की शिक्षा का ख्याल रखे, न कि बनावटी ढंग से गरीब बच्चों को अलग-थलग करके उनके इर्द-गिर्द चक्कर खाता रहे, जैसे कि उनकी जरूरतें आम बच्चों से अलग हों। क्या यह मुमकिन है कि विंच (1996) ने गुणवत्ता और शिक्षा में जो बेहद असरकारी दलील दी है उसका अनुसरण करते हुए, इस शब्द को भारतीय शिक्षाविदों के शब्दकोश के साथ गूंथा जा सके। बहरहाल, जैसा कि इस पर्व की शुरुआत में ही चर्चा की गई थी, कि 'गुणवत्ता' का विचार भी, शिक्षा के विचार का ही एक अंतर्जात हिस्सा है। वास्तव

में यह तभी मुमकिन होगा कि 'गुणवत्ता' के सरोकारों और उसमें व्यक्त की जाने वाली दिलचस्पियों का फायदा उठाया जा सके, उसके दायरे को फैलाया जा सके, उसे मानवीय बनाया जा सके और उसे ऐसा आकार दिया जा सके कि वह ज्यादा बुनियादी सुधारों के काम आ सके जो मौजूदा ज्यादा सीमित सरोकारों की भी परवाह कर लेंगे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, 2005) इसी उम्मीद की एक अभिव्यक्ति है, यह दस्तावेज बेहद मजबूती के साथ व्यापक तौर पर बुनियादी और प्रणालीगत सुधारों की जरूरत को अभिव्यक्त करता है और 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लक्ष्यों व प्रावधानीकरण' को 'गुणवत्ता' पर विचार के तरीके के तौर पर अपनाता है।

यह संभावना दो कारणों से सीमित नजर आती है। पहला, सही मायने में देखें तो शिक्षा में बुनियादी सुधार के मुद्दों को उठाने की जगहें सिकुड़ गई हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या-2005 के बावजूद बहुत ही कम राज्यों ने पाठ्यपुस्तकों में गुणवत्ता के मुद्दे को हाथ में लिया है। प्रमुख मसला 'पाठ्यपुस्तक' को सिर्फ पढ़ा देने भर का है, इस बात से कोई मतलब नहीं है कि कौन-सी किताब पढ़ाई जा रही है। हाल ही में प्रथम ने यह दावा किया कि वह, सिर्फ साधारण तौर पर शिक्षक-शिक्षार्थी अंतःक्रिया को सुनिश्चित करके छत्तीसगढ़ राज्य में नाटकीय तौर पर शुरुआती साक्षरता की उपलब्धियां बढ़ाने में कामयाब हो गया था और छत्तीसगढ़ राज्य की वह पुरानी जानी-पहचानी समस्या-विभिन्न आदिवासी समूहों की विविध भाषाओं वाले बच्चों की, उनके कार्यक्रम में चिंता का कोई मुद्दा बनकर उनके सामने उभरकर आती भी नजर नहीं आई। इसलिए भी, रोशनी का दायरा शिक्षकों में 'विषयवस्तु संबंधी ज्ञान' की कमी, सेवाकालीन प्रशिक्षण और पैरा टीचरों की प्रभाविकता (लागत संबंधी) पर पड़ते ही सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा की प्रकृति, विषयवस्तु और डिजाइन पर की जाने वाली चर्चाएं एकदम हवा हो गईं।

दूसरा, यहां पर शिक्षा तंत्र की नौकरशाही में व्यापक रूप से यह समझ बनी हुई है कि तंत्र चरमरा रहा है और इस छवि को आत्मसात कर लेने से उन्होंने यह मानना कबूल कर लिया है कि इन हालातों में सबसे बेहतर तो यही किया जा सकता है कि अपने काम के दायरे को सिकोड़ लिया जाए और खुद में सुधार व पुनर्जीवन की जरूरत को कम से कम कर दिया जाए। इसलिए यहां पर निजी संस्थाओं और गैर-सरकारी संस्थाओं में बढ़ोतरी हुई है, जो बड़े पैमाने पर कामों को हाथ में लेने और उन्हें लागू करने के लिए पेशकश करती हैं। 'कम लागत' पर 'बेहतर काम' करती हैं, और इस सबको होने देने में राज्य की चाहत में लगातार बढ़ोतरी हो रही है।

इस सबके साथ, आखिर में, शिक्षक में अविश्वास की खतरनाक हद तक बढ़ोतरी, सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा पर घटता जोर और स्कूलों का लगातार बढ़ता 'गैर-संस्थानीकरण' हो रहा है। विकेन्द्रीकरण पर होने वाली तमाम लफ्फाजी के बावजूद नौकरशाही तंत्र लगातार केन्द्रीकृत रूप में काम कर रहा है। मापने व सूक्ष्म प्रबंधन की मान्यताओं से ग्रस्त होने की वजह से नौकरशाही सरकारी स्कूलों की संस्थानिक पहचान और उनके संस्थागत ढांचों की अहमियत को कम करके आंक रही है। विकेन्द्रीकरण सिर्फ समुदाय को स्कूल से जोड़ने और अभिभावकों को ग्राम शिक्षा समिति से जोड़ने के काम तक ही सीमित नजर आता है, ताकि शिक्षकों की जवाबदेही को बढ़ाया जा सके। ♦

अनुवाद : रविकांत और राधिका

1. इस हिस्सों में दी गई दलीलें मेरे पर्थे "शिक्षा में गुणवत्ता : दक्षिण के इतिहास और उसके बहसतलब असरों से एक नजरिया" (सारंगपाणि, 2005), पर आधारित हैं।
2. कर्नाटक राज्य गुणवत्ता गारंटी संस्थान 2000 में स्थापित किया गया, यह राज्य में विश्व बैंक द्वारा लाए गए सलाहकार के काम पर आधारित था, जिसे विश्व बैंक ने अजीम प्रेमजी फाउंडेशन के साथ मिलकर बनाया था। अजीम प्रेमजी फाउंडेशन कर्नाटक और दूसरे राज्यों में 'गुणवत्ता गारंटी' प्रारूप ('शिक्षा गारंटी योजना') पर आधारित बच्चों के परीक्षणों को बढ़ावा दे रहा है।
3. इन खासियतों को यूनीसेफ समर्थित कार्यक्रमों जैसे कर्नाटक में नली-कली और तमिलनाडु में गतिविधि आधारित शिक्षण में देखा जा सकता है।
4. इस तरीके पर ज्यादा व्यापक चर्चा के लिए कुमार व सारंगपाणि, 2004 देखें।
5. ये दावे पैन आईआईटी 2008 में चेन्नई में शिक्षा पर हो रही एक पैनल चर्चा के दौरान हुए प्रस्तुतीकरण में माधव चहाण द्वारा किए गए।

संपर्क

टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान, वी. एन. पूर्व मार्ग,
देवनार, मुम्बई-400088